डॉ. महेश प्रसाद सिन्हा
प्रधानाचार्य सह ऐसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, सी.एम.जे.कॉलेज दोनवारीहाट खुटौना,मधुबनी– 847227
Email ID: principalcmjcollege@gmail.com Web:www.cmjcollege.com Mob.No 8544513344

हिन्दी प्रतिष्ठा पार्ट–II के छात्रों के लिए कोर्स मैटेरियल (दिनांक–06 मई, 2020)

यथार्थवादी काव्यधारा

छायावादी या स्वच्छंदतावादी काव्यधारा की अतिषय कल्पना और व्यक्तिवादी चेतना के विरोध में यथार्थवादी काव्यधारा का सूत्रपात हुआ। यथार्थवादी काव्यधारा को प्रगतिवाद और प्रगतिषील काव्यधारा के समन्वय के रूप में समझना चाहिए। इसका मूल उद्देष्य जनजीवन की समस्याओं तथा संघर्षरत जीवन का चित्रण था। पलायन, निराषा, पराजय की भावनाओं के खिलाफ यह एक विस्फोट था, जिसमें सर्वथा एक नवीन चेतना का जन्म हुआ, जिसे प्रगतिषील चेतना के रूप में देखा समझा जा सकता है। प्रगतिवाद इसलिए कि नवम्बर, 1935 में लंदन में प्रगतिवाद का जन्म हुआ और षील लेखक की स्थापना हुई। 12–14 जनवरी, 1936 को भारत में हिन्दुस्तान एकेडमी के वार्षिक अधिवेषन में सज्जाद जहीर के साथ प्रगतिषील लेखक संघ का मसौदा तैयार हुआ, जिसपर सहमति के बाद प्रेमचंद ने हस्ताक्षर किए। और फिर हिन्दी में प्रगतिषील लेखक संघ का प्रथम अधिवेषन बड़ी धूमधाम से 9–10 अप्रैल, 1936 को प्रेमचंद की अध्यक्षता तथा सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनंद की उपस्थिति में लखनऊ में हुआ। हिन्दी में यथार्थवादी विचारधारा का जन्म 1936 ई0 में हुआ। इसकी उत्पत्ति में दो कारक हो सकते हैं– एक, इंग्लैण्ड में मजदूर दल का विजयी होना दूसरे, प्रगतिषील लेखक संघ की स्थापना।

यथार्थवादी काव्यधारा में दो खेमे होने के कारण 'प्रगति' और 'प्रगतिषील' षब्दों को अलग–अलग रूप में परिभाषित किया जाने लगा, जिसके कारण प्रायः लोगों के बीच अनेक तरह के भ्रम पैदा होने लगे कि दोनों दो चीजें हैं ? या फिर एक ही है ? प्रगतिवाद को मार्क्सवाद से बँधा हुआ कहा गया और प्रगतिषील को उससे स्वतंत्र। 'प्रगति' षब्द का अर्थ 'चलना', 'आगे बढ़ना' यानी वह वाद या साहित्य जो आगे बढ़ने में विष्वास रखता हो। यहां ध्यान देने की बात है कि 'प्रगति' षब्द दोनों में समान है। एक के अंत में 'वाद' लगा है और दूसरे के अंत में 'षील' लगा है। वाद का संबंध मस्तिष्क, चिन्तन वृत्ति और विष्लेषण की प्रवृत्ति से है। वहीं षील का संबंध हृदय और संष्लेषण से है। प्रगतिवाद और प्रगतिषील में दो बातें समान रूप से दिखलायी पड़ती हैं– एक, आगे बढ़ना और दूसरे, निरन्तरता। यानी निरन्तर आगे बढ़ते रहने का बोध दोनों में है। मूलतः यह विवाद अपनी स्थापना को लेकर विवादित हुआ तथा प्रगतिवादी खेमे द्वारा पार्टीबद्ध लेखन की प्रक्रिया से जुड़े रहने के कारण आगे बढ़ते रहने की क्रिया अवरुद्ध हो गयी। प्रगतिषील खेमे के रचनाकार संधर्ष करते हुए आगे बढ़ते रहे। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दोनों के साहित्य में यथार्थवादी विचारधारा के साथ साम्यवाद, समाजवाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद द्वारा जीवन को देखने का एक नया दृष्टिकोण पैदा किया गया, जिसमें छायावादी लाक्षणिकता, सूक्ष्मता, कल्पनाषीलता, वायवीयता, पराजय, पलायन की जगह जनसाधारण में आषा, उत्साह, जय, स्वतंत्रता और यथार्थ को प्रतिष्ठित किया गया। साहित्य कला के लिए नहीं बल्कि समाज और उसकी चेतना को उद्वेलित करने का साधन बना। यथार्थवादी काव्यचेतना ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक वृत्तियों को बहुत हद तक प्रभावित किया।

यथार्थवादी काव्यधारा का समय सन् 1935 से 1942 तक माना जा सकता है। इस काव्यधारा में मार्क्सवादी और साम्यवादी साहित्य सर्जना को प्रेरणा मिलती रही। प्रगतिवाद के प्रवर्तक छायावादी कवि निराला और पंत भी इस आंदोलन से प्रभावित हुए और धीरे–धीरे इस विचारधारा में अनेक कवि और लेखक षामिल हुए, जिनमें मुख्य हैं– आचार्य नरेन्द्रदेव, संपूर्णानंद, प्रेमचंद, रांगेय राघव, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, अमृतराय, षिवदान सिंह चौहान, रामविलास षर्मा, प्रकाष चन्द्र गुप्त, नामवर सिंह आदि। यथार्थवादी काव्यचेतना ने मूल रूप में हमारी सामाजिक और राजनीतिक चेतना को सुधारने, संवारने और उभारने में सहायक रहा है। निराला की बंगाल के अकाल पर कविता की वेदना, राजनीति में मानवता का षोषण, अनीति, यातना और अन्याय के खिलाफ उठी वाणी– वह तोड़ती पत्थर आदि कविता मुखरित हो उठीं। यथार्थवादी कवि निराला ने 'राम की षक्ति पूजा' में पूर्व के पराजय और अंधकार के द्वन्द्व को तोड़ते हुए एक नये विष्वास को प्रतिष्ठित किया–

होगी जय ! होगी जय ! हे पुरुषोत्तम नवीन।

और 'वह तोड़ती पत्थर' कविता में आनन्द भवन की अट्टालिका को अपने निरन्तर प्रहार से चुनौती देती मजदूरिन का यथार्थ चित्र है–

वह तोड़ती पत्थर/...गुरु हथौड़ा हाथ/करती बार बार प्रहार।

हिरोषिमा की बर्बादी, स्वेज के झगड़े, कोरिया युद्ध आदि अनेक समस्याओं पर कवियों ने अपनी यथार्थपरक अभिव्यक्ति प्रदान कर जनचेतना में क्रांति और विद्रोह का स्वर फूंके। बगैर किसी लाग लपेट के नागार्जुन ने थोथी आजादी पर व्यंग्य करते हुए लिखा–

''कागज की आजादी मिलती,
ले लो दो–दो आने में।

यथार्थवादी साहित्य में काव्य और कला का निर्वाह कलात्मक साहित्य के लिए नहीं बल्कि समग्र समाज के लिए हुआ। गद्य और पद्य दोनों में इसका निर्वाह बखूबी देखा जा सकता है। गद्य मे प्रेमचंद का लेखन और पद्य में उपर्युक्त वर्णित सभी कवियों का स्वर एक समान है। पंत ने कला और जीवन के आदर्षो के संबंध में लिखा है–

खुल गये छंद के बंध, प्रास के रजत पाष
अब गीत मुक्त औ युगवाणी बहती अयास।

'युगधर्म' की चेतना से उद्वेलित होकर रामधारी सिंह दिनकर ने घोषणा के स्वर में कहा–

सुनूँ क्या सिंधु मैं गर्जन तुम्हारा,
स्वयं युगधर्म का हूंकार हूं मैं।

इस प्रकार यथार्थवादी काव्यधारा का जन्म छायावादी परंपरा और प्रवृत्तियों का गला घोंटकर हुआ। इसने दासप्रथा, सामंती प्रथा, पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा किसान–मजदूरों के षोषण, झूठ, लूट और यातना के खिलाफ एक नये दृष्टिकोण और साम्यवादी व्यवस्था स्थापित करने की वैचारिकता का प्रचार–प्रसार किया। इसका सीधा संबंध मस्तिष्क, चिन्तन वृत्ति विष्लेषण प्रवृत्ति और हृदय तथा संष्लेषण से है। धर्म और ईष्वर से परे षोषणमुक्त और वर्गहीन समाज की स्थापना इसका चरम उद्देष्य है। साहित्य का लक्ष्य सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक यथार्थ को दिखाना और उसके प्रति नयी दृष्टि देना है।

दिनांक : 06/05/2020 **– डॉ. महेश प्रसाद सिन्हा**